स्वामी दयानन्द की सूक्तियाँ

सत्यार्थप्रकाश

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सम्पादिका

श्रीमती रवीश कुमारी मेहता

प्रधाना—आर्यसमाज मंदिर, आनन्द विहार, दिल्ली

मूल्य : ५ रुपये

सरस्वती साहित्य संस्थान

२९५, जागृति एन्क्लेव, विकास मार्ग, दिल्ली-९२

दूरभाष २२१५२४३५

स्वामी दयानन्द की सूक्तियाँ

1. जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। *[सत्यार्थ. समु. 7]*
2. जो परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ सुख के लिये दे रखे हैं उसके गुण भूल जाना ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*
3. जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया या मूठी में धर लिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता वैसे ही अनन्तर सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना कभी नहीं सिद्ध हो सकता। *[सत्यार्थप्र. स. 7]*
4. जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसको वैसा ही वर्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे। अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*
5. दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 4]*
6. जब तक इस होम का प्रचार रहा तब तक आर्य्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखो से पूरित था अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*

7. इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणो के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*
8. "जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को "जीव" मानता हूँ।" *[सत्यार्थ.-स्वमन्त.]*
9. क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी लाब सकता है? नहीं नहीं, मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*
10. जैसे "सक्कर सक्कर" कहने से मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये बिना "राम राम" कहने से कुछ भी नहीं होगा। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*
11. चारों वेदों में ऐसा नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*
12. जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेद विद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*
13. वेद परमेश्वरोक्त हैं इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम मानते हैं। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*
14. जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*
15. जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी, सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कहीं करेगा आचरण और धर्म भ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्यावर्त्त में रह कर दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहलायेगा। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 10]*

16. कलियुग नाम काल है, काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्माधर्म के काज में साधक बाधक नहीं। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*

17. आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादव का सत्यानाश हो गया। परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःख सागर में डुबा मारेगा? *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 10]*

18. पारस मणि पत्थर सुना जाता है, वह बात झूठी है। परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिसको लोह रूपी दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*

19. जब लौं वर्तमान और भविष्यत में उन्नतशील नहीं होते तब लौं आर्यावर्त्त और अन्य देशस्य मनुष्यो की बुद्धि नहीं होती। जब बुद्धि के कारण वेदादि सत्य शास्त्रों का पठनपाठन, ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान, सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 7]*

20. जो ब्राह्मणादि उत्तम करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और तो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण मे गिनना अवश्य चाहिये। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 4]*

21. जो दुष्ट कर्मचारी द्विज को श्रेष्ठ, कर्मकार शूद्र को नीच मानें तो इसके परे पक्षपात् अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक क्या होगा।

22. जो विद्यादि सद्गुणों में गुरुत्व नहीं है झूठमूठ कण्ठी, तिलक, वेद विरुद्ध मंत्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरू ही नहीं किन्तु गडरिये हैं। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*

23. "जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार मे प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान् सत्योपदेश से सब का उपकार करे, उसको साधु कहते हैं। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*

24. जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में सन्यासी भी तत्पर रहें तभी सब आश्रम उन्नति पर रहें। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*
25. सन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा अधर्म व्यवहारों से छुड़ा सब संशयों का छेदन कर सत्य धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त करें। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 5]*
26. जैसी यह पृथ्वी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। और वे ताप और प्रकाशादि भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 2]*
27. उत्तम दाता उसको कहते हैं जो देश, काल को जान कर सत्य विद्या धर्म की उन्नति रूप परोपकारार्थ देवे।*[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*
28. जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। *[स.प्र. समु. 2]*
29. अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफ़ीम आदि—जो-जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 10]*
30. देखो जब आर्यों का राज्य था तब महोपकारक गाय आदि नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त्त व अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल होते थे। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 10]*
31. इन पशुओं के मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 10]*
32. सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 3]*
33. शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं इसलिये संस्कारों का करना मनुष्यों को अति उचित है।*[संस्कार विधि]*

34. भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हों तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे फिर सुख कहाँ? *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 3]*

35. जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से बर्तकर सबके सुधार के दृष्टा बने। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 6]*

36. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् सामाजिक, आत्मिक और शारीरिक उन्नति करना।

[आर्यसमाज का छठा नियम]

37. जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जाये उसका नाम तर्पण है। परन्तु यह जीवितों के लिये हैं मृतकों के लिये नहीं।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 3]

38. जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्यामतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा।

[सत्यार्थप्रकाश उत्तरार्द्ध अनुभूमिका]

39. सब मनुष्यों को न्याय दृष्टि से वर्त्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये।

[सत्यार्थप्रकाश अनुभूमिका]

40. जिस बात में ये सहस्र एकमत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित झूठा, अधर्म अग्राह्य है।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]

41. जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करें। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 9]*

42. यही सज्जनों की रीति है कि अपने व पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों को ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें करावें।

[सत्यार्थप्रकाश अनुभूमिका समुल्लास 14]

43. पूर्व जन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार भविष्यत जन्म होते हैं।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 9]

44. कोई कहे कि माता पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति हुई, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तैराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र पुत्री का विवाह किया, इत्यादि सब असम्भव है क्योंकि वह सब बातें सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 3]

45. ''सब मनुष्यों को उचित है कि सब के मतविषयक पुस्तकों को समझ कर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें नहीं तो सुना करें।'' *[सत्यार्थप्रकाश अनुभूमिका समुल्लास 13]*

46. मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये। *[सत्यार्थप्रकाश]*

47. विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपेदश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें।

[सत्यार्थप्रकाश भूमिका]

48. जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 11]*

49. परमात्मा सब के मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्यामत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों।

[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 10]

50. यदि तुमको सत्यमत ग्रहण करने की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो। *[सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 14]*

भेंट स्वरूप प्रदान करने वाली कुछ पुस्तकें

1. धर्म और मर्यादा के मूर्त्तरूप : भगवान श्रीराम–*कृष्ण बाला*..Rs.10/-
2. सुरत्ना नारी–*स्वामी मीरां यति*.................................. Rs. 6/-
3. देवयज्ञ मीमांसा : यज्ञ पद्धति–*महात्मा ज्ञानेश्वरानंद* .. Rs. 10/-
4. अमृतमन्थन की वैदिक विधि(सन्ध्या वंदन)–*म. ज्ञानेश्वरानंद*..Rs. 6/-
5. सन्ध्या प्रभाकर–*स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती* Rs.12/-
6. शिव पार्वती संवाद–*आचार्य हरिदेव* .... Rs. 8/-
7. बाल चरित्र निर्माण–*डॉ. गौतम श्रीमाली* ....Rs. 25/-
8. बाल शंका समाधान–*मदन रहेजा*..........................Rs. 20/-
9. धर्म का सत्य स्वरूप–*डॉ. प्रेमपाल शास्त्री* ....Rs. 10/-
10. वेद मंजरी–*सुभाष चन्द्र गुप्ता*..................................Rs. 35/-
11. सफल जीवन के स्वर्णिम सूत्र (3 भाग)–*सुभाष चन्द्र गुप्ता*...Rs.25/-
12. सत्यार्थ प्रकाश गीतांजलि–*सुभाष चन्द्र गुप्ता* .... Rs. 5/-
13. आदर्श जीवन झांकियां (तीन भाग)–*सुभाष चन्द्र गुप्ता*Rs. 15/-
14. जीवन निर्माण गीतांजलि–*सुभाष चन्द्र गुप्ता* .... Rs. 4/-
15. योग के चमत्कार (6 भाग)–*सुभाष चन्द्र गुप्ता* .... Rs. 5/-
16. योग क्रियाएं एवं प्राणायाम–*(बच्चों के लिए)*...........Rs. 10/-
17. सुख का सरोत : सन्ध्या–*पुष्पा गुप्ता* .... Rs. 6/-
18. उपयोगी घरेलू नुस्खें–*सुभाष चन्द्र गुप्ता*..................Rs. 18/-
19. एक्यूप्रेशर (प्राकृतिक चिकित्सा)–*सुभाष चन्द्र गुप्ता* .. Rs. 12/-
20. जड़ी-बूटियों द्वारा रोग उपचार–*सुभाष चन्द्र गुप्ता* ...... Rs. 8/-
21. फलों द्वारा रोग उपचार–*सुभाष चन्द्र गुप्ता*............... Rs. 7/-
22. हमारी रसोई घरेलू औषधालय–*सुभाष चन्द्र गुप्ता*...... Rs. 7/-
23. जीवन सुधार कहानियाँ–*कांशीराम चावला*...............Rs. 18/-

सरस्वती साहित्य संस्थान

२६५, जागृति एन्क्लेव, विकास मार्ग, दिल्ली-९२ दूरभाष २२१५२४३५

॥ ओ३म् ॥

सत्यार्थप्रकाश

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मित

सरस्वती साहित्य संस्थान

२६५, जागृति एन्क्लेव, विकास मार्ग, दिल्ली-६२

दूरभाष २२१५२४३५

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिए उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्य युक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जानें व मानें उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी,परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो बेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ सब महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।

मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य हैं। मेरी कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचारित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल-चलन है उसका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है।

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवन् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं–कि चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों–उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुण्वान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे। इसमें श्रीमान् महाराजा भर्तृहरिजी आदि ने श्लोक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूँ–

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥

भर्तृहरिः (नीति शतक, श्लोक ८५)

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥२॥

महाभारते (उद्योगपर्व–प्रजगरपर्व-अ. ४०। श्लोक। १२)

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥३॥

मनुः (अ.८ श्लो. १७)

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥४॥

(मुण्डकोप. मु. ३, खं. १, मं. ६)

नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥५॥

उपनिषदि

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सबको निश्चय रखना योग्य है। अब मैं जिन-जिन पदार्थों को जैसा-जैसा मानता हूँ उन-उन का वर्णन संक्षेप से यहाँ करता हूँ कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने-अपने प्रकरण में कर दिया है। इनमें से–

१. प्रथम 'ईश्वर' जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूँ।
२. चारों 'वेदों' (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को

निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानता हूँ, वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिन के प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपांग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मा दे महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उन को परतः प्रमाण अर्थात वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ।

३. जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उस को **'धर्म'** और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उस को 'अधर्म' मानता हूँ।

४. जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को **'जीव'** मानता हूँ।

५. जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ।

६. **'अनादि पदार्थ'** तीन हैं। एक ईयबर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उन के गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।

७. **'प्रवाह से अनादि'** जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म, उत्पन्न होते हैं वे बियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ।

८. **'सृष्टि'** उस को कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल हो कर नाना रूप बनना।

९. **'सृष्टि का प्रयोजन'** यहीं है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिए है? उस ने कहा देखने के लिए। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी।

१०. **'सृष्टि सकर्तृक'** है। इस का कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है। क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का 'कर्ता' अवश्य है।

११. **'बन्ध'** सनिमित्तक अर्थात् **अविद्या** निमित्त से है। जो-जो पाप कर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसीलिए यह 'बन्ध' है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।

१२. **'मुक्ति'** अर्थात् सर्वदुःखों से छूटकर ब धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

१३. **'मुक्ति के साधन'** ईश्वरोपासना योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

१४. **'अर्थ'** वह है जो धर्म से ही प्राप्त किया जाए और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको 'अनर्थ' कहते हैं।

१५. **'काम'** वह है जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाए।

१६. **'वर्णाश्रम'** गुण कर्मों की योग्यता से मनता है।

१७. **'राजा'** उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्याय धर्म का सेवी, पितृवत् वर्त्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सद यत्न किया करें।

१८. **'प्रजा'** उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजब्रिदोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते।

१९. जो सदा विचारकर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हठावे (= हटावे) और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे सो 'न्यायकारी' है, उसको मैं भी ठीक मानता हूँ।

२०. **'देव'** विद्वानों की और अविद्वानों को **'असुर'** पापियों को **'राक्षस'** अनाचारियों को **'पिशाच'** मानता हूँ।

२१. उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना **'देवपूजा'** कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा, इनकी मूर्त्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ।

२२. **'शिक्षा'**–जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं।

२३. **'पुराण'**–जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण, पुस्तक है उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ, अन्य भागवतादि को नहीं।

२४. **'तीर्थ'** जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्य भाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म है उसी को तीर्थ समझता हूँ, इतर जलस्थलादि को नहीं।

२५. **'पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा'** इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिस के बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

२६. **'मनुष्य'** को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूँ।

२७. **'संस्कार'** उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। उसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिए कुछ भी न करना चाहिए।

२८. **'यज्ञ'** उस को कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान अग्निहोत्रादि जिन से वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है, उस को उत्तम समझता हूँ।

२९. जैसे **'आर्य्य'** श्रेष्ठ और **'दस्यु'** दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे मैं भी मानता हूँ।

३०. **'आर्य्यावर्त्त'** देश इस भूमि का नाम ईसलिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है। इन चारों के बीच में जितना देश है उसको आर्य्यावर्त्त' कहते और जो इसमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य्य कहते हैं।

३१. 'जो साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह 'आचार्य' कहाता है।

३२. **'शिष्य'** उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है।

३३. **‘गुरु’** माता पिता और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी ‘गुरु’ कहाता है।
३४. **‘पुरोहित’** जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे।
३५. **‘उपाध्याय’** जो वेदों का एक देश वा अङ्गों को पढ़ाता हो।
३६. **‘शिष्टाचार’** जो धर्माचरण पूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह **‘शिष्ट’** कहाता है।
३७. ‘प्रत्यक्षादि आठ **‘प्रमाणों’** को मैं भी मानता हूँ।
३८. **‘आप्त’** जो यथार्थवक्ता, धर्मातमा, सब के सुख के लिए प्रयत्न करता है उसी को **‘आप्त’** कहता हूँ।
३९. **‘परीक्षा’** पाँच प्रकार की है। इसमें से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम चौथी आप्तों का व्यवहार और पाँचवीं अपने आत्मा की पवित्रता विद्या, इन पाँच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिए।
४०. **‘परोपकार’** जिससे मनुष्यों के दुराचार छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़ें उसके करने को परोपकार कहता हूँ।
४१. **‘स्वतन्त्र परतन्त्र’** जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है।
४२. **‘स्वर्ग’** नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।
४३. **‘नरक’** जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री को प्राप्त होता है।
४४. **‘जन्म’** जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो, पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ।
४५. शरीर के संयोग का नाम ‘जन्म’ और वियोग मात्र को **‘मृत्यु’** कहते हैं।
४६. **‘विवाह’** जो नियम पूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना वह **‘विवाह’** कहाता है।
४७. **‘नियोग’** विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा

नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना।

४८. **'स्तुति'** गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना, इसका फल प्रीति आदि होते हैं।

४९. **'प्रार्थना'** अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिए ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

५०. **'उपासना'** जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योग अभ्यास से साक्षात् करना उपासाना कहाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

५१. **'सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना'** जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो-जो गुण नहीं है उनसे पृथक मान कर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुणप्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपसना कहाती है।

ये संक्षेप में स्वसिद्धान्त दिखला दिए हैं इनकी विशेष व्याख्या इसी **'सत्यार्थप्रकाश'** के प्रकरण-प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो-जो बात सब के सामने माननीय है उसको मानना अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं, उनको मैं प्रसन्न (त्रयसन्द) नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिए हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सब से सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहनुभूति से 'यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे' जिससे सब लोग सहज से धर्म्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि कर के सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।